णायकुमारचरिउ के दार्शनिक मतों की समीक्षा

जिनेन्द्र कुमार जैन

भारतीय साहित्य में अनेक ऐसे काव्य ग्रन्थ लिखे गये हैं, जिनमें जीवन के विभिन्न पक्ष प्रतिपादित हुए हैं। विभिन्न युगों के धार्मिक एवं दार्शनिक जीवन को प्रतिबिम्बित करने की प्रवृत्ति मध्ययुग के भारतीय साहित्य में अधिक देखने को मिलती है। गुप्तयुग के बाद प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषाओं में जो जैन साहित्य लिखा गया है उसमें काव्य तत्त्व के साथ-साथ धार्मिक एवं दार्शनिक जीवन को भी अंकित किया गया है। १०वीं शताब्दी की अवधि में लिखे गये जैन साहित्य में धर्म तथा दर्शन की बहुमूल्य सामग्री छिपी पड़ी है। पुष्पदन्त के ग्रंथ इसका प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रस्तुत निबन्ध में पुष्पदन्तकृत णायकुमारचरिउ के कतिपय दार्शनिक मतों की समीक्षा प्रस्तुत की गई है।

नागकुमार का जीवनचरित जैन लेखकों में प्रिय रहा है। यद्यपि कथा का प्रारम्भ स्वाभाविक ढंग से होता है। फिर भी नागकुमार के उस लोकोत्तर रूप को वर्णित करना, जो उसे श्रुतपंचमी व्रत के पुण्य स्वरूप प्राप्त हुआ है, पाठकों के मन को आकर्षित किए बिना नहीं रहता। पौराणिक काव्यरूढ़ियों के साथ-साथ इस ग्रन्थ में अन्य तत्कालीन दार्शनिक एवं धार्मिक मतों के खण्डन-मण्डन की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। यद्यपि जैनधर्म विरक्तिमूलक सिद्धान्तों पर आधारित है, तथापि इसमें (प्रेमाख्यानक कथा काव्यों में) धर्म के अनुष्ठानों को फलभोगों की प्रचुर उपलब्धि बताया गया है। किन्तु कथा के अंत में नायक भोगों को भोगकर दीक्षा ग्रहण करके परम मोक्ष को प्राप्त होता है।

जैन दर्शन का स्वरूप—पुष्पदन्त की काव्य रचना का मुख्य उद्देश्य जिनभक्ति व जैनधर्म का प्रचार-प्रसार रहा है। इसीलिये उन्होंने कथा के बीच-बीच में मुख्य कथानक को रोककर जैनधर्म एवं दर्शन के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या की है। तत्त्वमीमांसा, आचारमीमांसा के साथ-साथ पदार्थ-विवेचन, कर्मसिद्धान्त, अहिंसा, त्रिरत्न, स्याद्वाद आदि पक्षों पर उन्होंने विशेष प्रकाश डाला है।

पदार्थ की अनेकान्तिकता सिद्ध करने के लिए अथवा वस्तु अनेक धर्म वाली है यह सिद्ध करने के लिए सप्तभंगी या स्याद्वाद सिद्धान्त का निरूपण जैन दर्शन के अन्तर्गत किया गया है। वस्तु किसी दृष्टि से एक प्रकार की होती है, और किसी दृष्टि से दूसरे प्रकार की। अतः उसके शेष अनेक धर्मों (गुणों) को गौण बताते हुए, गुण विशेष को प्रमुख बनाकर प्रतिपादित करना स्याद्वाद है। पुष्पदन्त ने महापुराण[१] तथा णायकुमारचरिउ[२] में इसका उल्लेख किया है। गुण

---

१. महापुराण—३।२।७

२. णायकुमारचरिउ—१।१।९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा पर्याय से युक्त वस्तु द्रव्य कहलाती है।[1] जीव, अजीव (पुद्गल) धर्म, अधर्म एवं आकाश द्रव्य को अस्तिकाय[2] तथा काल द्रव्य को अनास्तिकाय के रूप में प्रस्तुत किया है।

जीव को मोक्ष प्राप्त करने के लिए त्रिरत्न—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का आश्रय लेना अति आवश्यक है।[3] जैनदर्शन के अनुसार आत्मविकास की १४ अवस्थाएँ होती हैं जिन्हें गुणस्थान कहते हैं। इन्हीं अवस्थाओं का क्रमिक विकास होने से आत्मा धीरे-धीरे कर्मबन्ध से मुक्त होकर समस्तमलरहित, पूर्ण निर्मल या केवलज्ञान की स्थिति में पहुँच जाता है, जिसे मोक्ष कहा गया है। सम्यक् दर्शन व ज्ञान को प्राप्त करने के बाद ही सम्यक् चारित्र की आराधना सम्भव है। इसके सकल और विकल दो भेद हैं। ५ महाव्रतों को (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह व ब्रह्मचर्य) पालने वाले मुनियों के चारित्र सकल हैं और विकल चारित्र वाले गृहस्थ पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत एवं चार शिक्षाव्रतों का पालन करते हैं।[4]

कवि इस जगत् की नश्वरता का अनुभव करते हुए संसार के प्रपंच को छोड़कर कहीं ऐसे स्थान पर जाने की कामना करता है, जहाँ न नींद हो, न भूख हो, न भोग-रति हो, न शारीरिक सुख हो और न नारी दर्शन हो।[5] अर्थात् वह मोक्ष की कामना करता है।

जैनधर्म संसार की प्रत्येक वस्तु में जीव-स्थिति मानता है। प्रत्येक श्रावक या गृहस्थ के लिए अणुव्रत का जो विधान है, उसमें अहिंसा को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। अहिंसक रहने के लिए यत्नपूर्वक मद्य, मांस, मधु आदि का त्याग तथा मूली, अदरक, नीम के पुष्प आदि का भी त्याज्य आवश्यक है।[6] मनुष्य के आत्मविकास में जिस शक्ति के कारण बाधा उपस्थित होती है, उसे कर्म कहते हैं। कर्म का आत्मा से सम्पर्क होने पर जो अवस्था उत्पन्न होती है वह बन्ध कहलाता है। आत्मा का बन्ध करने वाले इन कर्मों के आस्रव को अवरुद्ध करने के लिए संवर की आवश्यकता होती है। संवर द्वारा समस्त कर्मों के आस्रव के द्वारों का निरोध करने पर नवीन कर्मों का प्रवेश रुक जाता है तथा पुराने कर्म क्रमशः क्षीण होते चले जाते हैं यही निर्जरा है और कर्मों का पूर्ण क्षय ही मोक्ष है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में जैनधर्म के विभिन्न सिद्धान्तों के वर्णन के साथ-साथ वैदिक, चार्वाक, बौद्ध एवं सांख्यदर्शन तथा अन्य भारतीय मिथ्या एवं दूषित धारणाओं पर कवि ने प्रश्न-चिह्न लगाये हैं। वैदिक धर्म की यज्ञप्रधान-धार्मिक क्रियाओं, चार्वाक दर्शन के भौतिकवाद, बौद्ध दर्शन के क्षणिकवाद व प्रतीत्यसमुत्पाद एवं सांख्यदर्शन के पुरुष व प्रकृति के सम्बन्ध आदि की समीक्षा पुष्पदन्त ने विभिन्न दलीलों और प्रमाणों के आधार पर की है।[7]

---

१. "गुणपर्यायवद् द्रव्यं"—तत्त्वार्थसूत्र, ५।३७

२. णायकुमारचरिउ—१।१२।२ एवं महापुराण—८९।७।१-२

३. णायकुमारचरिउ—९।१३।४

४. णायकुमारचरिउ—१।१२।३ एवं महापुराण—१८।७, ६।४।७

५. णायकुमारचरिउ—१।११।१०-११

६. समीचीनधर्मशास्त्र—४।१९

७. णायकुमारचरिउ—संधि ९, सम्पादक—डॉ० हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैदिक दर्शन की समीक्षा—महाकवि पुष्पदन्त ने प्रस्तुत ग्रन्थ में याज्ञिकी हिंसा, मांस-भक्षण एवं रात्रि-भोजन को पुण्य का प्रतीक मानने वाले वेद पुराण सम्बन्धी ब्राह्मणों की मान्यता की आलोचना करते हुए कहा है कि--"मृगों का आखेट करने वाला जो मांस-भक्षण से अपना पोषण करता है, वह अहिंसा की घोषणा क्या कर सकता है ?[१] (पुरोहित) मद्यपान और मांसभक्षण करता है तथा रात्रिभोजन को पुण्य कहता है, जिह्वा का लोलुपी होता हुआ तनिक भी विचार नहीं करता। अतः जगत् में वेद प्रमाण नहीं हो सकते। क्योंकि बिना जीव के कहीं (प्रमाणभूत) शब्द की प्राप्ति हो सकती है ? बिना सरोवर के नया कमल कहाँ से उत्पन्न हो सकता है।"[२] कवि ने हिंसा के खण्डन के लिए अपना लक्ष्य मुख्यतः उन ब्राह्मणों को बनाया है, जो यज्ञों में पशुबलि करते हैं तथा मांस-भक्षण करते हैं। उनकी मान्यता है कि देवों और पूर्वजों की संतुष्टी के लिए पशुबलि करना उचित है और इसको करने वाले स्वर्ग के अधिकारी होते हैं। इसी प्रसंग में ब्राह्मणमत का खण्डन करते हुए कवि कहता है कि—यज्ञ में पितृविधि का बहाना लेकर, तीक्ष्ण कटार से काटकर विशेष प्रकार के मांस रस का भक्षण करते हुए समस्त जीवों का भक्षण कर डाला अर्थात् सबको सच्चे धर्म से भ्रष्ट कर दिया। रुद्र ब्रह्म आदि सब देवों को स्वयं देखा तथा ब्रह्मचर्य एवं वेदविहित क्रियाकाण्ड का स्वयं पालन किया, किन्तु जल से धोने मात्र से कोयला श्वेत होता है ? या मनुष्य-देह पवित्र हो सकता है।[३]

महापुराण एवं जसहरचरिउ में भी वैदिक दर्शन के इस हिंसात्मक मत की समीक्षा मिलती है—"पशुओं का वध करके पितृपक्ष पर द्विज पंडित मांस खाते हैं। अतः हिंसा-दंभ तो इनसे पूर्णतः लिपटे हैं, तब देह को जल से धोने से क्या होगा ? कहीं अंगार दूध से धोने से श्वेत हो सकता है।[४] जसहरचरिउ में कवि ने पशुबलि के सम्बन्ध में कहा है कि जगत में धर्म का मूल वेद-मार्ग है। वेद में देव-तुष्टि के लिए पशुबलि करना उचित माना गया है और इसको करने वाले स्वर्ग के अधिकारी होते हैं। इसकी समीक्षा करते हुए कवि कहता है कि—चाहे कोई पुण्य अर्जन हेतु मंत्र-पूजित खड्ग से पशुबलि करे, यज्ञ करे अथवा अनेक दुर्धर तपों का आचरण करें। परन्तु जीव दया के बिना सब निष्फल है। कोटि शास्त्रों का सार यही है कि जो पाप है वह हिंसा है। जो धर्म है वह अहिंसा है।[५] इसीलिए कवि ने प्राणिबध को आत्मबध के समान माना है।[६]

वैदिक मान्यतानुसार तत्त्व एक ही है, वह है—'ब्रह्म' जो नित्य है।[७] इस मान्यता की समीक्षा करते हुए कवि कहता है कि—"यदि ऐसा होता तो एक जो देता है, उसे दूसरा कैसे

१. णायकुमारचरिउ—१।८।१
२. णायकुमारचरिउ—९।८।६-९
३. णायकुमारचरिउ—९।९।७-१०
४. महापुराण—७।८।९-१३
५. जसहरचरिउ—२।१८
६. पाणिबहु भडारिए अप्पबहु—जसहरचरिउ—२।१४।६
७. णायकुमारचरिउ—९।१०।३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेता है ? एक स्थिर खड़ा रहता है और अन्य (दूसरा) दौड़ता है। एक मरता है तो दूसरे अनेक जीवित रहते हैं। जो नित्य है, वह बालकपन, नवयौवन तथा वृद्धत्व कैसे प्राप्त करेगा।[1]

कवि ब्राह्मण धर्म के सामान्य विश्वासों की समीक्षा के साथ-साथ उनके देवताओं की भी समीक्षा करता है। शिव के सम्बन्ध में कहता है कि —"जो कामदेव का दहन करता है, वह महिला (पार्वती) में आसक्त कैसे हो सकता है ? ज्ञानवत्त होते हुए मदिरा-पान भी करते हैं। निष्पाप (निस्पृह) होकर ब्रह्मा के सिर का छेदन करते हैं। जो सर्वार्थसिद्ध है उसे बैल रखने से क्या प्रयोजन ? जो दयालु है उसे शूल धारण से क्या लाभ ? जो आत्म संतोष से ही तृप्त हैं, उन्हें भिक्षा के लिये कपाल क्यों ? अस्थिमाल धारण करके भी वे पवित्र होते हैं। नित्य ही मद और मोह से उन्मत्त व रोष से परिपूर्ण पुरुष को लिंग-वेश की आवश्यकता क्यों ?[2]

महापुराण में भी कहा गया है कि जो शिव नृत्य-गान करते हैं, डमरू बजाते हैं, पार्वती के समीप रहते हैं तथा त्रिपुर आदि रिपुवर्ग को विदीर्ण करते हैं, वे मानव समुदाय को संसार-सागर से कैसे पार कर सकते हैं।[3] इसीलिए कवि वैदिक मत की उपयोगिता मूढ़ मनुष्यों के लिए बतलाता है।[4]

चार्वाक दर्शन की समीक्षा—केवल प्रत्यक्ष को प्रमाण मानने वाले जड़वादी या भौतिकवादी दर्शन (चार्वाक दर्शन) सुख को ही जीवन का परम लक्ष्य मानते हैं। इसीलिए चार्वाक दर्शन में निम्न उक्ति को विशेष महत्त्व दिया गया है—

यावज्जीवेत सुखं जीवेत, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनम् कुतः॥

"प्रबोध चन्द्रोदय" नामक रूपक के द्वितीय अंक में कृष्णमिश्र ने जड़वादी (चार्वाक) दर्शन का परिचय इस प्रकार दिया है—

"लोकायत ही एकमात्र शास्त्र है, जिसमें प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ही एकमात्र तत्व है। और काम ही पुरुषार्थ है। भूतों (पृथ्वी आदि) से चैतन्य उत्पन्न होते हैं, कोई परलोक नहीं है, मृत्यु ही निर्वाण है।"[5] लेकिन कवि इस सिद्धांत का खण्डन करते हुए कहता है कि–"जल और अग्नि अपने-अपने स्वभाव से परस्पर विरोधी हैं,

---

१. एक्कु णिच्चु किं तच्चु भणिज्जइ, एक्कु देइ अण्णो किं लिज्जइ।
एक्कु थाइ अण्णेक्कु वि धावइ एक्कु मरइ अण्णेक्कु वि जीवइ॥
णिच्चहो कहिं लभइ बालत्तणु णवजोव्वणु पुणरवि बुड्ढतणु।
—णायकुमारचरिउ—९।१०।३-५

२. णायकुमारचरिउ—९।७।४-९

३. महापुराण—६५।१२।६-७

४. 'लोइयवेइय मूढ़ताणाइं'—णायकुमारचरिउ—४।३।३

५. "सर्वलोकायतमेव शास्त्रं, यत्र प्रत्यक्षमेव प्रमाण पृथिव्यत्यपत्तेजोवायुरीतितत्वानि, अर्थकामो पुरुषार्थो भूतान्येव चेतयन्ते। नास्ति परलोकः मृत्यु रेवायवर्गः।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर वे एक स्वरूप होकर कैसे रह सकते हैं ? पवन चंचल है और पृथ्वी अपनी स्थिरता लिए हुए स्थिर है।[१] यदि जीव का जीवत्व कृत्रिम है और वह चारभूतों के संयोग से उत्पन्न हुआ है, तो मेरा कहना है कि भोगों का उपयोग करने वाले त्रैलोक्य के जीवों का स्वभाव एक सा क्यों नहीं है ? शरीर एक सा क्यों नहीं है ? अतः यह सब पण्डितों का वितण्डामात्र है।[२]

महापुराण में राजा महाबल के मंत्री महामति द्वारा चार्वाक दर्शन के तात्त्विक सिद्धान्त का समर्थन किया गया है।[३] तब इसका खण्डन करते हुए अन्य मंत्री स्वयंबुद्ध कहता है कि—"भूतचतुष्टय के सम्मिलन मात्र से जीव (चैतन्य) किसी भी प्रकार उत्पन्न नहीं हो सकता। यदि ऐसा होता तो औषधियों के क्वाथ (काढ़ा) से किसी पात्र में भी जीव उत्पन्न हो जाते, परन्तु ऐसा नहीं होता।[४]

जैन, बौद्ध और न्यायदर्शन जहाँ अनुमान को भी प्रमाण मानकर चलते हैं वहाँ चार्वाक दर्शन केवल प्रत्यक्ष को प्रमाण मानता है। इसीलिये जैन, बौद्ध, ब्राह्मण आदि मतों के आचार्यों ने इस भौतिकवादी दर्शन का विरोध किया है।[५]

जसहरचरिउ में भी तलवर (कोतवाल) एवं मुनि के संवादों में चार्वाक दर्शन के "प्रत्यक्ष ही प्रमाण है" इस मत की समीक्षात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई है।[६]

बौद्ध-दर्शन की समीक्षा :— बौद्ध दर्शन जगत् की समस्त क्रियाओं का मूल आत्मा को मानता है। किन्तु उसकी पृथक् एवं नित्य सत्ता को स्वीकार न करते हुए, उसे अनित्य मानता है। क्योंकि वह जगत् को क्षणविध्वंशी मानता है।[७] प्रत्येक वस्तु है, यह एक मत है, तथा प्रत्येक वस्तु नहीं है यह दूसरा एकान्तिक दृष्टिकोण है। इन दोनों ही एकान्तिक दृष्टिकोणों को छोड़कर बुद्ध मध्यममार्ग का उपदेश देते हैं। मध्यम सिद्धान्त का सार है कि "जीवन सम्भूति (Becoming) है, भावरूप है। संसार की प्रत्येक वस्तु अनित्य धर्मों का संघात मात्र है। अतः प्रत्येक वस्तु एकक्षण को ही रहती है। बौद्धदर्शन पदार्थों की उत्पत्ति कारण-कार्य से मानता है। जिसे 'प्रतीत्यसमुत्पाद (Dependent Origination) कहते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार एक वस्तु से एक ही कार्य होता है और अगले ही क्षण दूसरा कार्य होता है। अथवा

---

१. णायकुमारचरिउ—९।११।१-२
२. णायकुमारचरिउ—९।११।४-६
३. महापुराण—२०।१७
४. महापुराण—२०।१८।१०-११
५. रामायण (वाल्मीकि) अयोध्याकाण्ड—१००।३८
   सद्धर्मपुण्डरीक-परिच्छेद १३,
   आदिपुराण (जिनसेन) ५।७३
६. जसहरचरिउ—३।२२।१७, ३।२३।५-९, ३।२४।१-३
७. णायकुमारचरिउ—९।५।२
८. संयुत्तनिकाय—१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्य बिल्कुल नहीं होता। तब उस पहले कार्य की वस्तु का (कारणका) अस्तित्व समाप्त समझना चाहिए। अतः एक वस्तु (कारण) से एक क्षण में एक ही कार्य हो सकता है।[1]

प्रस्तुत प्रतीत्यसमुत्पाद की समीक्षा करते हुए पुष्पदंत कहते हैं कि—'यदि क्षणविनाशी पदार्थों में कारण-कार्यरूप धारा प्रवाह, जैसे—गाय (कारण) से दूध (कार्य) एवं दीपक (कारण) से अंजन (कार्य) की प्राप्ति माना जाये तो गौ एवं दीपक (कारण) के विनष्ट हो जाने पर दुग्ध एवं अंजन (कार्य) की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? इसी प्रकार यदि क्षणिकवाद (Momenterism) सिद्धान्त के अनुसार कहा जाये कि क्षण-क्षण में अन्य जीव उत्पन्न होते रहते हैं, तो प्रश्न उठता है कि जो जीव घर से बाहर जाता है, वही घर कैसे लौटता है ? जो वस्तु एक ने रखी उसे दूसरा नहीं जान सकता।[2]

महापुराण में राजा महाबल के एक सम्भिन्नमति नामक मंत्री द्वारा क्षणिकवाद का समर्थन किया गया है।[3] किन्तु मंत्री स्वयंबुद्ध ने उसके क्षणिकवाद को खण्डित करते हुए कहा है कि —"यदि जगत् को क्षणभंगुर माना जाये तो किसी व्यक्ति द्वारा रखी गई वस्तु प्राप्त न होकर अन्य व्यक्ति को प्राप्त होनी चाहिए। इसी प्रकार द्रव्य को क्षणस्थायी मानने से वासना (जिसके द्वारा पूर्व रखी गई वस्तु का स्मरण होता है) का भी अस्तित्व नहीं रह जाता।[4]

सांख्य दर्शन की समीक्षा—सांख्य दर्शन की मान्यतानुसार इस सृष्टि का निर्माण पुरुष (आत्मा) और प्रकृति (समस्तपदार्थ) के सहयोग से हुआ है। सृष्टि विकास में सहयोगी सांख्य-मत के २५ तत्त्वों के नाम कवि ने प्रस्तुत ग्रन्थ में गिनाए हैं।[5] सांख्य दर्शन प्रकृति को जड़, सक्रिय, एक तथा त्रिगुणात्मक (सत्व, रज व तमोगुणों से युक्त) एवं पुरुष (आत्मा) को चेतन, निष्क्रिय, अनेक तथा त्रिगुणातीत मानता है। निष्क्रिय पुरुष अथवा जड़ प्रकृति अकेले, सृष्टि का निर्माण नहीं कर सकते। इन दोनों के संयोग से ही इस सृष्टि का निर्माण सम्भव है। अन्धे एवं लंगड़े के दृष्टान्तानुसार निष्क्रिय पुरुष एवं सक्रिय प्रकृति सृष्टि निर्माण में परस्पर सहयोग करते हैं। किन्तु यह बात कवि को उचित प्रतीत नहीं होती, इसीलिये वह कहता है कि—क्रियारहित निर्मल एवं शुद्ध पुरुष, प्रकृति के बन्धन में कैसे पड़ सकता है ? क्रिया के बिना मन, वचन और काय का क्या स्वरूप होगा ? बिना क्रिया के जीव (पुरुष) पाप से कैसे बंधेगा ? और उससे कैसे मुक्त होगा ? यह सब विरोधी प्रलाप किस काम का ? पांचभूत, पांच गुण, पांच इन्द्रियाँ तथा पांच तन्मात्राएँ एवं मन, अहंकार और बुद्धि इनका प्रसार करने के लिये पुरुष प्रकृति से कैसे संयोग कर बैठा ?[6]

सांख्य दर्शन के सृष्टि विकास के सिद्धान्त का मनन करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि जब प्रकृति जड़ है तो वह सक्रिय कैसे हो सकती है ? तथा पुरुष (आत्मा) चैतन्ययुक्त होते

१. रामनाथ शर्मा—भारतीय दर्शन के मूल तत्त्व, पृ० १५३
२. णायकुमारचरिउ—९।५।८-११
३. महापुराण—२०।१९।८-१०
४. महापुराण—२०।२०।४-५
५. भूयइ पच पंचगुणइ, पंचिन्दियइ पंच तन्मत्तउ।
मणुहंकारबुद्धिपसरु कहीं पयईए पुरिसु संजुत्तउ॥
—णायकुमारचरिउ'—९।१०।१२-१३
६. णायकुमारचरिउ—९।१०।९-१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए भी निष्क्रिय कैसे हो सकता है ? और भी जड़ एवं सक्रिय प्रकृति का चेतन एवं निष्क्रिय पुरुष से संयोग कैसे हो सकता है ? इन परस्पर विरोधी गुणों के होने उनमें संसर्ग या निकटता संभव नहीं है। इसलिए कवि कहता है कि—"यह लोक कणाद, कपिल, सुगत (बुद्ध) तथा द्विज शिष्य (चार्वाक) आदि उपदेशकों द्वारा भ्रान्ति में डाला गया है।[१]

अन्य मतों की समीक्षा—उपर्युक्त दार्शनिक मतों के अतिरिक्त कवि ने न्याय, वैशेषिक, शैव दर्शन एवं कुछ मिथ्या धारणाओं तथा अंधविश्वासों पर भी चर्चा की है। न्याय एवं वैशेषिकदर्शन की चर्चा कवि ने अवतारवाद की आलोचना करते हुए इस प्रकार की है—"जिस प्रकार उबले हुए जौ के दाने पुनः कच्चे जौ में परिवर्तित नहीं हो सकते, उसी प्रकार सिद्धत्व को प्राप्त जीव पुनः देह कैसे धारण कर सकता है ? अर्थात् नहीं कर सकता। पक्षपाद-(न्याय-दर्शन के प्रणेता) तथा कणधर (वैशेषिक दर्शन के प्रणेता, कणाद) मुनियों ने शिवरूपी गगनारविंद (आकाशकुसुम-असम्भववस्तु) को कैसे मान लिया ? और उसका वर्णन किया।[२]

कवि ने शैव अनुयायी कौलाचार का वर्णन करते हुए कहा है कि—वे अपनी साधना में मद्य, मांस, मत्स्य, मृदा तथा मैथुन का प्रयोग करते हैं। शैव मतवादी अन्य देवों की मान्यताओं को मिथ्या मानते हैं, तथा आकाश को शिव कहते हैं।[३]

गाय और बैलों को मारा जाता है, ताड़ा जाता है, फिर भी गौवंश मात्र को देव कहा जाता है। पुरोहितों द्वारा याज्ञिकीहिंसा (यज्ञ में पशुबलि करना) की जाती है एवं मृगों को मार कर मृगचर्म धारण करना पवित्र माना जाता है।[४] चूँकि इनसे जीव हिंसा होती है फिर भी अंधविश्वासी लोग इसके एक पक्ष को ही ध्यान में रखते हैं।

कवि ने अपने अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं दार्शनिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। कुवलयमालाकहा, धर्मपरीक्षा, चन्द्रप्रभचरित, यशस्तिलकचम्पू, शान्तिनाथचरित आदि समकालीन प्रतिनिधि जैन ग्रन्थ हैं, जिनमें जैन धर्म एवं दर्शन के सिद्धान्तों की चर्चा करते हुए परमत खण्डन की परम्परा देखने को मिलती है।

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में धार्मिक एवं दार्शनिक मतों की समीक्षा विभिन्न प्रमाणों सहित प्रस्तुत करके जनसमुदाय को सच्चे धर्म एवं सदाचार के पथ की ओर चलने के लिए प्रेरित किया गया है तथा दुष्कर्म के पथ पर चलनेसे रोका गया है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण होगा कि यह काव्य अपने समय का प्रतिनिधि काव्य है, जिसमें तत्कालीन धार्मिक एवं दार्शनिक सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती है।

शोध-छात्र
जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया वि० वि०, उदयपुर

---

१. णायकुमारचरिउ—९।११।७

२. सित्थुजाइ किं जवणालत्तहो घड किं पुण विजाइ दुद्धत्तहो।
सिद्धभमइ किं भवसंसार गहिय विमुक्क कलेवर भारए।
अक्खवाय कणयमुणि मण्णिउ सिवमयणारबिंदु किं वण्णिउ।
—णायकुमारचरिउ–९।७।१-३

३. णायकुमारचरिउ—९।६।३

४. णायकुमारचरिउ—९।९।१–३,५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org